ग्लोबल वार्मिंग और उमरी कीराई

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

ग्लोबल वार्मिंग यानी धरती के तापमान में वृद्धि और ऊर्जा की बढ़ती ज़रूरतें दो जुड़वां समस्याएं हैं और इनके कई नए-नए समाधान सुझाए जा रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग का कारण मूलतः यह है कि वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ गई है जो धरती की गर्मी को अंतरिक्ष में बिखरने नहीं देती। ग्लोबल वार्मिंग का एक प्रत्यक्ष असर यह हुआ है कि ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है जिसकी वजह से समुद्र के स्तर में धीरे-धीरे मगर लगातार वृद्धि हो रही है। वृद्धि की यही रफ्तार रही तो आशंका है कि आने वाले दिनों में कई निचले तटवर्ती क्षेत्र व टापू समुद्र में डूब जाएंगे।

आखिर यह स्थिति पैदा कैसे हुई? हम शायद यह मानना चाहें कि यह कुदरती कारणों से हुआ है, मगर हकीकत यह है कि इसका कारण हमारे द्वारा बढ़ती मात्रा में जैविक ईंधन को जलाया जाना है। इनमें कोयला, लकड़ी, तेल व पेट्रोलियम शामिल हैं। पिछली सदी से मानव जिस रफ्तार से ऊर्जा की खपत कर रहे हैं, उसकी वजह से वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ती गई है। कार्बन डाईऑक्साइड पैदा होने के बाद वायुमंडल को छोड़कर कहीं जाने वाली नहीं है क्योंकि हाइड्रोजन व हीलियम के विपरीत यह एक अपेक्षाकृत भारी गैस है। इसी कारण से ग्रीनहाउस प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग और समुद्र तल में वृद्धि जैसी चीज़ें सामने आ रही हैं।

कुछ लोग यह सोच रहे हैं कि इस गैस को किसी तरह कहीं थाम लिया जाए या उपयोग कर लिया जाए। कार्बन डाईऑक्साइड को थामने यानी फिक्स करने का एक तरीका तो स्वयं प्रकृति अपनाती है - प्रकाश संश्लेषण। हरे पेड़-पौधे व शैवाल कार्बन डाईऑक्साइड व पानी सोखते हैं और सूर्य के प्रकाश की मदद से इन्हें जोड़कर कार्बोहाइड्रेट बना लेते हैं। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि ज़्यादा पेड़ लगाओ, ज़्यादा कार्यक्षम शैवाल विकसित करो और उन्हें चारों ओर फैलाओ।

पेड़ लगाने का विचार बुरा नहीं है मगर यह काम विशाल पैमाने पर करना होगा। इसके लिए उपलब्ध ज़मीन पर्याप्त नहीं है क्योंकि हम खाद्यान्न उपजाने वाले क्षेत्रों को या रिहायशी इलाकों को तो इस काम में लगा नहीं सकते। एक विकल्प यह है कि इसके लिए रेगिस्तानों व बंजर भूमि का उपयोग किया जाए। इसीलिए आजकल कुछ मरुस्थलीय वनस्पतियों की ओर ध्यान दिया जा रहा है। जैसे रतनजोत और जोजोबा। इनसे कार्बन डाईऑक्साइड को थामने में तो मदद मिलती ही है, तेल भी मिलता है जिसका उपयोग जैव-डीज़ल के रूप में किया जा सकता है।

कई सरकारें व कंपनियां इस तरह की

जैव-ईंधन खेती को थोड़ा ज़्यादा ही बढ़ावा दे रही हैं। हमें थोड़ा रुककर यह सोचना चाहिए कि इस काम में किस ज़मीन का उपयोग किया जा रहा है। इसके अलावा यह भी देखना ज़रूरी होगा कि खुद जैव-डीज़ल के उपयोग से कितनी कार्बन डाईऑक्साइड पैदा होती है और क्या वनस्पति तेल हरफनमौला ईंधन है। इन मुद्दों पर आजकल काफी गर्मागरम व जानकारी-आधारित बहस जारी है।

सैलिकॉर्निया का जादू

इस संदर्भ में लोगों का ध्यान तटवर्ती इलाकों व समुद्र के नज़दीकी टापुओं पर भी गया है, जहां लवणीयता के कारण खाद्यान्न फसलें नहीं उगाई जा सकतीं। मगर कुछ ऐसी वनस्पतियां भी हैं जो ऐसे इलाकों में खूब फलती-फूलती हैं। ऐसा ही एक पौधा है *सैलिकॉर्निया* जिसे समुद्री कुकरमुत्ता या *उमरी केराई* भी कहते हैं।

अमरीका में एरिज़ोना विश्वविद्यालय की पर्यावरण अनुसंधान प्रयोगशाला के डॉ. कार्ल ह्यूजेस इस वनस्पति को बढ़ावा देने की वकालत काफी उत्साह से कर रहे हैं। डॉ. ह्यूजेस एक गैर-मुनाफा संगठन सीवॉटर फाउंडेशन के अध्यक्ष भी हैं। उनका सुझाव है कि यदि समुद्री पानी को मोड़कर तटवर्ती झीलों में भर लिया जाए, तो वहां *सैलिकॉर्निया* की खेती की जा सकती है।

सैलिकॉर्निया ही क्यों? सबसे पहली बात तो यह है कि इसके सिरे खाने योग्य होते हैं। पशु व मनुष्य दोनों इन्हें खा सकते हैं। यह पौधा एक खाद्य तेल भी प्रदान करता है (जिसमें बहु-असंतृप्त वसा अम्ल काफी मात्रा में होते हैं)। इस तेल का उपयोग जैव-ईंधन के रूप में भी किया जा सकता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि गेहूं तथा कुछ अन्य अनाज फसलों की अपेक्षा *सैलिकॉर्निया* अधिक कार्यक्षम प्रकाश संश्लेषक है। प्रकाश संश्लेषण के दौरान *सैलिकॉर्निया* उस क्रियाविधि का उपयोग करता है जिसे वनस्पति शास्त्री सी-4 मार्ग कहते हैं। इसमें कार्बन डाईऑक्साईड को सबसे पहले चार कार्बन वाले यौगिक ऑक्सेलोएसिटेट में बदला जाता है। इसमें पीईपीसी-एस नामक एंज़ाइम का उपयोग होता है। दूसरी ओर गेहूं कार्बन डाईऑक्साईड को शुरू में तीन कार्बन वाले यौगिक (फॉस्फोग्लिसरेट) में बदलता है। इसमें आरयूबीआईसी-एस एंज़ाइम का उपयोग होता है।

सैलिकॉर्निया (गन्ने के समान) कार्बन डाईऑक्साइड को बेहतर ढंग से थामता है। वह यह काम लवणीय भूमि में कर सकता है और अंत में तेल प्रदान करता है जिसका उपयोग (आप चाहें तो) ईंधन के रूप में किया जा सकता है।

भावनगर स्थित केंद्रीय लवण व समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान काफी समय से *सैलिकॉर्निया* पर काम कर रहा है। संस्थान के निदेशक पुष्पितो घोष बताते हैं कि तेल के अलावा यह पौधा कई अन्य कीमती रसायनों का स्रोत है। वे कहते हैं कि *सैलिकॉर्निया* के तेल को अन्य तेलों के साथ मिलाकर उपयोग किया जाना चाहिए क्योंकि तब इसका स्वाद भी बेहतर होता है और यह ज़्यादा समय तक टिकता है। इस पौधे से प्राप्त एक गौण उत्पाद भी काफी उपयोगी हो सकता है। वह है इससे प्राप्त लवण जिसमें पोटेशियम की काफी मात्रा होती है जो पोषण की दृष्टि से उपयुक्त है।

भावनगर संस्थान ने एक अन्य सूक्ष्मजीव की खोज की है जो नाइट्रोजन को फिक्स करता है और यह *सैलिकॉर्निया* का सहजीवी है। तो लवण को सहन करने वाले सहजीवियों की यह जोड़ी दोहरा काम कर सकती है - कार्बन और नाइट्रोजन दोनों को फिक्स कर सकती है। भावनगर संस्थान ने *सैलिकॉर्निया* द्वारा पैदा किए जाने वाले एक जीवाणुरोधी रसायन पर पेटेंट भी हासिल कर लिया है।

यह सब तो बहुत बढ़िया है मगर क्या यह उपयोगी नहीं होगा कि हम अनाज की ऐसी किस्में विकसित करें जो लवण-सह हों? यह सुनामी प्रभावित व लवण प्रभावित इलाकों के लिए एक वरदान होगा। जैसे दिल्ली के एच.वाय. मोहन राम बताते हैं कि केरल में धान की एक ऐसी किस्म होती है जो खारे पानी में उगाई जा सकती है। मनीला स्थित अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान में धान की 40 किस्में हैं जो लवणीय परिस्थितियों में उग सकती हैं। इनमें से कुछ का परीक्षण केरल व हरियाणा में चल रहा है। ***(स्रोत फीचर्स)***